आमुख

ओशो की समग्रतावादी जीवनदृष्टि तद्जन्य नव-संन्यास को समझने में बहुत लोगों को कठिनाई होती है। मजा यह है कि कठिनाई का कारण इस जीवन-शैली की दुरूहता नहीं उलटे इसकी सरलता है। बात इतनी स्पष्ट, इतनी सीधी, सत्य व निकट की है कि इतने निकट सत्य को देखने, सुनने, समझने के न हम आदी हैं, न ही राजी। किंतु हम सुनें न सुनें, समझें न समझें, अब मनुष्य के सामने दूसरा कोई विकल्प है भी नहीं इस जीवन-शैली के सिवाय। ओशो की अध्यात्म व विज्ञान, परमात्मा व संसार को जोड़ने वाली जीवन-दृष्टि की कुछ झलकियां यहां देना उपयोगी समझता हूं, जिनमें से कुछ उद्धरण इसी पुस्तक से और कुछ अन्य से हैं।

ओशो के वचन :

"पश्चिम में जहां चीजें बहुत बढ़ गई हैं उनको तुम कहते हो भौतिकवादी लोग। सिर्फ इसीलिए कि उनके पास भौतिक चीजें ज्यादा हैं। इसलिए भौतिकवादी। और तुम अध्यात्मवादी, क्योंकि तुम्हारे पास खाने-पीने को नहीं है, छप्पर नहीं है, नौकरी नहीं है। यह तो खूब अध्यात्म हुआ! ऐसे अध्यात्म का क्या करोगे? ऐसे अध्यात्म को आग लगाओ।

और जिनके पास चीजें बहुत हैं, उनकी पकड़ कम हो गई है--स्वभावतः। कितना पकड़ोगे? जिनके पास कुछ नहीं है, उनकी पकड़ ज्यादा होती है।

सच तो यह है कि जितनी भौतिक उन्नति होती है, उतना देश कम भौतिकवादी हो जाता है।

यह देश अध्यात्म की व्यर्थ दावेदारी करता है। इस देश को पहले भौतिकवादी होना चाहिए, तो यह अध्यात्मवादी भी हो सकेगा। इस देश के पास अभी तो शरीर को भी सम्हालने का उपाय नहीं है, आत्मा की उड़ान तो यह भरे तो कैसे भरे! वीणा ही पास नहीं है, तो संगीत तो कैसे पैदा हो! पेट भूखे हैं, उनमें प्रेम के बीज कैसे फलें! पेट भूखे हैं, उनमें ध्यान कैसे उगाया जाए?

मेरे हिसाब में हमने कोई अगर बड़ी से बड़ी भूल की है इन पांच हजार वर्षों में तो वह यह कि हमने भौतिकवाद की निंदा की है। और भौतिकवाद की निंदा पर अध्यात्मवाद को खड़ा करना चाहा है। उसका यह दुष्परिणाम है जो हम भोग रहे हैं। इसमें तुम्हारे साधु-संतों का हाथ है। और जब तक तुम यह न समझोगे कि तुम्हारे साधु-संतों की जिम्मेवारी है तुम्हें भिखमंगा रखने में, गरीब रखने में, दीन-बीमार रखने में, तब तक तुम इस नरक के पार नहीं हो सकोगे। क्योंकि तुम मूल कारण को ही न पहचानोगे तो उसकी जड़ कैसे कटेगी?

मेरे हिसाब में, भौतिकवाद अध्यात्मवाद का अनिवार्य चरण है। भौतिकवाद बुनियाद है मंदिर की और अध्यात्म मंदिर का शिखर है। बुनियाद के बिना शिखर नहीं हो सकता। भौतिकवाद और अध्यात्म में कोई विरोध नहीं है। सहयोग है।

आत्मा और शरीर में कितना सहयोग है, गौर से देखो तो!

तो भौतिकवाद और अध्यात्मवाद विपरीत नहीं हो सकते। भारत ने बड़ी भूल की है दोनों को विपरीत मानकर। पश्चिम भी भूल कर रहा है दोनों को विपरीत मानकर। पश्चिम ने भौतिकवाद चुन लिया, अध्यात्म के

खिलाफ। भारत ने अध्यात्म चुन लिया, भौतिकवाद के खिलाफ। दोनों ने आधा-आधा चुना, दोनों तड़फ रहे हैं। दोनों मछली जैसे तड़फ रहे हैं, जिसका पानी खो गया है। क्योंकि पानी समग्रता में है।

मेरा उद्घोष यही है कि हमें एक नई मनुष्यता का सृजन करना है। ऐसी मनुष्यता का, जो दोनों भूलों से मुक्त होगी। जो न भौतिकवादी होगी न अध्यात्मवादी होगी, जो समग्रवादी होगी। जो न तो देहवादी होगी, न आत्मवादी होगी, जो समग्रवादी होगी। जो बाहर को भी अंगीकार करेगी और भीतर को भी। बाहर और भीतर में जो विरोध खड़ा न करेगी। जो बाहर और भीतर के बीच संबंध बनाएगी, सेतु बनाएगी। एक ऐसी मनुष्यता का जन्म होना चाहिए। उसी मनुष्यता के जन्म के लिए प्रयास चल रहा है।

मेरा संन्यासी उसी नये मनुष्य की पहली-पहली खबर है। वह संसार को स्वीकार करता है। और फिर भी अध्यात्म को इनकार नहीं करता। वह अध्यात्म को स्वीकार करता है, फिर भी संसार को इंकार नहीं करता। वह संसार में रह कर और संसार के बाहर कैसे रहा जाए, इसका अनूठा प्रयोग कर रहा है।"

"इसलिए तुम्हें यहां प्रसन्नता दिखाई पड़ेगी, आह्लाद दिखाई पड़ेगा, बसंत दिखाई पड़ेगा। फूल खिलते मालूम होंगे। ये तुम जैसे ही लोग हैं। ठीक तुम जैसे। तुम्हारे जैसे संसार में रहते हैं, दुकान करते हैं, नौकरी करते हैं, बच्चे हैं, पत्नियां हैं, सब कुछ है। क्योंकि मैं किसी चीज से किसी को छुड़ाना नहीं चाहता। किसी को कहीं से व्यर्थ तोड़ना नहीं चाहता। मैं खिलाफ हूं उस संन्यास के जो भगोड़ापन सिखाता है। क्योंकि उस भगोड़े संन्यास ने दुनिया को बहुत कष्ट दिए हैं। वह किसी ने हिसाब नहीं रखा कि जब करोड़ों-करोड़ों लोग संन्यासी हुए, तो उनकी पत्नियों का क्या हुआ, उनके बच्चों का क्या हुआ? बच्चों ने भीख मांगी, चोर बने; पत्नियां वेश्याएं हो गईं, कि उन्हें भीख मांगने पर मजबूर होना पड़ा, दूसरों के बर्तन मलने पड़े! क्या हुआ उनकी पत्नियों का, क्या हुआ उनके बच्चों का, उनका हिसाब किसी ने भी नहीं रखा। अगर उनका हिसाब रखा जाए तो तुम बहुत हैरान होओगे। तुम्हारे तथाकथित संन्यासियों ने जितने लोगों को कष्ट दिया है, उतना किसी और ने नहीं दिया। एक-एक संन्यासी न मालूम कितने लोगों को कष्ट दे गया! मां है बूढ़ी, पिता है बूढ़ा, बच्चे हैं छोटे, पत्नी है, और रिश्तेदार हैं--और भाग गया! एक संन्यासी कम से कम दस-पच्चीस लोगों को दुख दे जाएगा--जितने लोग उससे संबंधित हैं।

और तुम्हारा संन्यासी बोझ हो जाता है समाज के ऊपर। मुफ्तखोर हो जाता है। उसकी सृजनात्मकता खो जाती है। वह तुम्हें चूसने लगता है। संसार को गालियां देता है। और सांसारिक लोगों के ऊपर ही निर्भर है। उनका ही दिया भोजन, उनके ही दिए कपड़े पहनता है। वे कमाते हैं, वह खाता है। और संसारियों को गालियां देता है और कहता है, तुम अज्ञानी हो, तुम पापी हो। और वह पुण्यात्मा है! चूसता तुम्हें है! शोषक है।

मैं उस संन्यास के पक्ष में नहीं हूं। मेरे संन्यास की नव धारणा है। नया प्रत्यय है मेरा संन्यास। जहां हो, जैसे हो, वैसे ही रहो। वहीं जागरण आ सकता है, कहीं और जाने की जरूरत नहीं। क्योंकि जागरण तुम्हारा स्वभाव है। जरा अपने को हिलाना-डुलाना है। जरा अपने को संकल्पवान करना है। जरा अपना समर्पण करना है। अपने अहंकार को विसर्जित करना है। और बसंत आया। बसंत आने में देर नहीं।

बस इतनी सी बात यहां घटी है। हमने बसंत को पुकारा है और बसंत आने लगा है।

संन्यास मेरे लिए त्याग नहीं है, भोग की परम कला है। संन्यास मेरे लिए परमात्मा को भोगने की विद्या है। परमात्मा के साथ नाचने, गाने, गुनगुनाने का आयोजन है। मैं लोगों को जीवन का विषाद नहीं सिखा रहा हूं, जीवन का आह्लाद! पुरानी तथाकथित संन्यास की धारणा जीवन-विरोधी थी। उसका मौलिक स्वर निषेध का था। मेरा मौलिक स्वर विधेय का है। जिओ, जी भर कर जिओ! एक-एक पल परिपूर्णता से जिओ! फिर कहीं और

स्वर्ग नहीं है। फिर यहीं स्वर्ग उतर आता है। जो परिपूर्णता से जीता है, उसकी श्वास-श्वास में स्वर्ग समा जाता है।

अच्छा हुआ आ गए! अच्छा हुआ कि तुम्हें दिखाई पड़ रहा है! क्योंकि भारतीय मन इतना रुग्ण हो गया है, इतना अंधा हो गया है, सदियों-सदियों के निषेध ने भारतीय मन को इतनी व्यर्थ की धारणाओं से भर दिया है कि देखना जो यहां घट रहा है, उसे पहचानना एकदम असंभव मालूम होता है। तुम सौभाग्यशाली हो, कि तुम लोगों की आंखों में देख सके और तुम्हें वहां शांति दिखाई पड़ी। तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम्हें थोड़ा सा स्वर्ग उतरता हुआ यहां अनुभव में आया। नहीं तो तथाकथित परंपरागत, रूढ़िग्रस्त मन जब यहां आता है, तो उसे बड़ी बेचैनी होती है, क्योंकि वह अपेक्षाएं लेकर आता है।

वह अपेक्षाएं लेकर आता है कि लोग बैठे होंगे उदास, झाड़ों के नीचे, धूनी रमाए, भभूत लपेटे, भूखे-प्यासे, रूखे-सूखे, मरुस्थल जैसे। क्योंकि वही उसकी महात्मा की धारणा है। और जब वह यहां आकर लोगों को नाचते देखता है, और जब वह यहां आकर देखता है कि बांसुरी बज रही है, और कहीं कोई धूनी नहीं दिखाई पड़ती; संगीत; और कहीं कोई शरीर पर भभूत रमाए हुए नहीं दिखाई पड़ता; लोग सुंदर तन, सुंदर मन, संगीत में डूबने को आतुर; नृत्य में जाने को तत्पर, तो वह चौंक जाता है। उसे लगता हैः यह कैसा संन्यास! यह कैसा आश्रम! यह कैसी तपश्चर्या! उसकी धारणाओं के विपरीत पड़ता है। वह अंधा हो जाता है, एकदम अंधा हो जाता है, उसे फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

या उसे ऐसी चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं जो उसके प्रक्षेपण हैं।

अगर वह देख लेता है एक जोड़े को हाथ में हाथ डाले चलते हुए, बस उसके प्राणों पर संकट आ जाता है। उसने जीवनभर वासना को दबाया है, वह उभर कर खड़ी हो जाती है। उसका प्रक्षेपण हो जाता है। वह उस युवक की जगह अपने को देखता है। और सोचता है कि अगर मैं इस युवक की जगह होता तो क्यों इस स्त्री का हाथ पकड़ता? उसने और किसी कारण से स्त्री का हाथ पकड़ा ही नहीं। उसने स्त्री को कभी और किसी तरह देखा ही नहीं, कामवासना की धारणा से ही देखा है, उतनी ही उसकी पहचान है। वह दूसरे पर भी वही थोप देता है। तुम वही देख सकते हो, जो तुम्हारे भीतर पड़ा है। तुम अपना कूड़ा-करकट दूसरों पर आरोपित कर देते हो।

तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम देख सके हो! तुम रूढ़ि से मुक्त हो! परंपरा का बोझ तुम पर कम है। ये अच्छे लक्षण हैं। ऐसे ही व्यक्तियों के लिए मेरा संन्यास है। मेरा तुम्हें निमंत्रण! आओ, सम्मिलित होओ इस राग में, इस रंग में!"

"इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि मेरे संन्यासी को जुआरी होने की क्षमता चाहिए, साहस चाहिए। अहंकार को दांव पर लगाना कोई छोटा-मोटा खेल नहीं है। सबसे बड़ा खेल है, इससे बड़ा फिर कोई खेल भी नहीं है। क्योंकि जिस दिन, जिस क्षण तुम इतना साहस जुटा लोगे कि कह सको कि मैं नहीं हूं, कि जान सको कि मैं नहीं हूं, कि अनुभव कर सको कि मैं नहीं हूं, कि मर जाओ स्वेच्छा से, वही संन्यास है। और उसी मृत्यु में समाधि का फूल खिलता है।"

"वह धनुषबाण लिए खड़ा ही है। तुम ही छिपे हो; तुम ही सामने नहीं आते। और किसने तुम्हें छिपाया है? तुम्हारी अस्मिता ने, तुम्हारे अहंकार ने। अहंकार तुम्हारी अपनी ईजाद है, आत्मा परमात्मा की भेंट। तुम आत्मा हो, अहंकार नहीं।

इन वचनों को एक खोजी, एक सत्यार्थी की तरह लेना, विद्यार्थी की तरह नहीं। ये वचन तुम्हारे भीतर नये-नये द्वार खोल सकते हैं। ये किसी पंडित के वचन नहीं हैं, एक प्रज्ञा-पुरुष के वचन हैं। एक अलमस्त के वचन हैं, जिसने पीआ है उसकी शराब को और जाना है उसके नशे को, जो मस्त हुआ है उसमें डूब कर।

ये वचन नहीं हैं, जलते हुए अंगारे हैं। ये मात्र वचन नहीं हैं; ये तुम्हारे जीवन को रूपांतरित कर दें, ऐसी कीमिया इनमें छिपी है।"